

बिम्बिसार से नन्दों तक मगध की साम्राज्यवादी नीति और उत्तर भारत के राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया

कुमारी नेहा चौहान

शोधार्थी, इतिहास विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश

ईसा-पूर्व छठी से चौथी शताब्दी के मध्य मगध का इतिहास छोटे क्षेत्रीय राज्य से व्यापक साम्राज्यवादी सत्ता की ओर क्रमिक संक्रमण का इतिहास है। इस प्रक्रिया की शुरुआत बिम्बिसार के शासन से स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जब विजय, वैवाहिक कूटनीति और अधीन प्रदेशों के प्रशासनिक समावेशन को एक संयुक्त नीति के रूप में अपनाया गया। अजातशत्रु ने इस आधार को आगे बढ़ाते हुए प्रतिद्वंद्वी राजतंत्रों और गण-संघों के विरुद्ध प्रत्यक्ष युद्ध, कूटनीतिक विभाजन और सामरिक नियंत्रण की नीति अपनाई। उदायिन के समय पाटलिपुत्र को राजकीय केंद्र के रूप में विकसित करने की प्रक्रिया ने विस्तृत क्षेत्रों पर नियंत्रण को अधिक स्थायी स्वरूप दिया। शिशुनाग ने अवन्ति जैसी दीर्घकालीन प्रतिद्वंद्वी शक्ति को मगध में सम्मिलित करके पूर्व और मध्य भारत के बीच राजनीतिक विभाजन को कम किया, जबकि कालाशोक के समय प्राप्त भू-क्षेत्रीय विस्तार को एक केंद्रीकृत राजकीय ढाँचे में बनाए रखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। नन्दों के शासन में यह प्रक्रिया एक नए स्तर पर पहुँची। महापद्मनन्द को पुराणीय परंपरा 'एकराट्' और अनेक क्षत्रिय राजवंशों का उच्छेदक बताती है, यद्यपि इन दावों को अक्षरशः स्वीकार नहीं किया जा सकता, वे इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि नन्द सत्ता ने गंगा घाटी से बाहर भी व्यापक राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य इन्हीं राजवंशीय चरणों को अलग-अलग घटनाओं की सूची के रूप में नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी नीति के क्रमिक विकास के रूप में समझना है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि उत्तर भारत का राजनीतिक एकीकरण एक बार में नहीं हुआ, यह विजय, अधीनता, प्रांतीय नियंत्रण, राजधानी-केन्द्रित प्रशासन, वैवाहिक संबंध, गण-संघों के विघटन और पराजित राजवंशों के समावेशन की दीर्घ प्रक्रिया से निर्मित हुआ। नन्दों तक पहुँचते-पहुँचते मगध ने ऐसी बहु-क्षेत्रीय सत्ता का रूप ले लिया जिसने आगे मौर्य साम्राज्य के लिए तैयार राजनीतिक आधार उपलब्ध कराया। इस प्रकार मगध का विस्तार स्थानीय विजय से अधिक, राजनीतिक अधिकार के क्रमिक केंद्रीकरण और क्षेत्रीय एकीकरण की परियोजना था।

प्रमुख शब्द: मगध, बिम्बिसार, अजातशत्रु, उदायिन, शिशुनाग, कालाशोक, महापद्मनन्द, नन्द वंश, साम्राज्यवादी नीति, राजनीतिक एकीकरण, पाटलिपुत्र।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय राजनीतिक इतिहास में मगध का उदय उस समय हुआ जब उत्तर भारत अनेक महाजनपदों, गण-संघों और क्षेत्रीय राजतंत्रों में विभाजित था। प्रारम्भिक चरण में कोई एक शक्ति ऐसी नहीं थी जो समूचे उत्तर भारत पर स्थायी प्रभुत्व स्थापित कर सके, इसलिए राजनीतिक व्यवस्था मूलतः बहु-केंद्रीय थी। इसी पृष्ठभूमि में मगध के शासकों ने केवल सीमाओं की रक्षा करने वाली नीति से आगे बढ़कर क्रमिक विस्तार, प्रतिद्वंद्वी शक्तियों की निष्प्रभावीकरण, नए क्षेत्रों के अधिग्रहण और उन क्षेत्रों को राजकीय व्यवस्था में सम्मिलित करने की नीति अपनाई। हेमचन्द्र रायचौधुरी ने बिम्बिसार से आरम्भ होने वाली इस प्रक्रिया को मगध की विजय और विस्तार की दीर्घकालीन दिशा के रूप में देखा है, जबकि आधुनिक इतिहासकार इसे राज्य-विस्तार और राजनीतिक केंद्रीकरण की क्रमिक प्रक्रिया के रूप में समझते हैं।¹ इसमें 'साम्राज्यवादी नीति' शब्द का प्रयोग आधुनिक औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के अर्थ में नहीं, बल्कि उस प्राचीन राजनीतिक प्रवृत्ति के लिए किया गया है जिसमें एक राज्य अपने निकटवर्ती स्वतंत्र राज्यों, गण-संघों और राजवंशों पर विजय प्राप्त कर उन्हें अधीन करता, उनके प्रशासनिक केंद्रों को नियंत्रित करता तथा अपनी सर्वोच्चता को व्यापक भू-क्षेत्र पर लागू करने का प्रयास करता है। इस दृष्टि से बिम्बिसार, अजातशत्रु, उदायिन, शिशुनाग, कालाशोक और नन्द शासक एक निरंतर प्रक्रिया के अलग-अलग चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके बीच राजवंशीय परिवर्तन अवश्य हुए, किन्तु मगध की विस्तारवादी दिशा समाप्त नहीं हुई। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य प्रश्न यह है कि कैसे अलग-अलग शासकों की नीतियाँ अंततः ऐसे राजनीतिक एकीकरण में परिवर्तित हुई जिसमें स्वतंत्र महाजनपदों की संख्या घटती गई, गण-संघों का प्रभाव कम हुआ, राजधानी-केन्द्रित प्रशासन बढ़ा और अनेक पूर्ववर्ती शक्ति-केंद्र एक व्यापक मगधी सत्ता के भीतर समाहित होते गए। इस प्रकार शोध का लक्ष्य घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि विस्तार से एकीकरण तक की राजनीतिक प्रक्रिया को समझना है।² इसी क्रम में विजय की प्रकृति, अधीन क्षेत्रों की स्थिति, सत्ता की निरंतरता और प्रशासनिक केंद्रीकरण को परस्पर जोड़कर देखा गया है।

बिम्बिसार की साम्राज्यवादी नीति: विजय, कूटनीति और प्रशासनिक समावेशन

बिम्बिसार के शासन में मगध की विस्तारवादी नीति पहली बार एक सुविचारित और बहुस्तरीय स्वरूप ग्रहण करती दिखाई देती है। उसका महत्व केवल अंग-विजय में नहीं, बल्कि इस तथ्य में था कि उसने प्रत्यक्ष विजय, वैवाहिक कूटनीति और अधीन प्रदेशों के प्रशासनिक नियंत्रण को एक ही राजकीय रणनीति के भाग के रूप में प्रयोग किया। अंग के शासक ब्रह्मदत्त को पराजित कर उसके राज्य को मगध में सम्मिलित करना एक निर्णायक कदम था, क्योंकि इससे मगध की पूर्वी सीमा सुरक्षित हुई और चम्पा जैसा महत्वपूर्ण राजकीय केंद्र उसके अधीन आया। जैन और

¹ रायचौधुरी, एच. सी. (1927). पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ एंशिअंट इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 97-98.

² थापर, रोमिला. (2002). अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए. डी. 1300. पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 152-153.

बौद्ध परंपराएँ संकेत देती हैं कि अंग को केवल लूटा नहीं गया, बल्कि वहाँ शासन की निरंतरता सुनिश्चित करने हेतु राजपरिवार के सदस्य को प्रशासनिक दायित्व दिया गया, इससे विजय को स्थायी अधिग्रहण में बदलने की नीति स्पष्ट होती है।³ बिम्बिसार ने दूसरी ओर कोशल, लिच्छवि और मद्र जैसे शक्तिशाली घरानों से विवाह संबंध स्थापित किए। इन संबंधों को केवल व्यक्तिगत विवाह मानना उचित नहीं है, क्योंकि उन्होंने मगध को तत्काल अनेक मोर्चों पर युद्ध से बचाया, कूटनीतिक प्रतिष्ठा बढ़ाई और विस्तार के लिए अनुकूल राजनीतिक वातावरण प्रदान किया। रायचौधुरी ने बिम्बिसार की इसी नीति को उसकी कुशल राजनीतिक दूरदर्शिता से जोड़ा है, जिसने उसे अंग पर अपना ध्यान केंद्रित करने की सुविधा दी।⁴ इस चरण की साम्राज्यवादी नीति का मुख्य गुण चयनात्मकता था: जहाँ प्रत्यक्ष विजय संभव और लाभकारी थी, वहाँ सैन्य अधिग्रहण किया गया, जहाँ शक्तिशाली पड़ोसी से संघर्ष महंगा पड़ सकता था, वहाँ वैवाहिक और राजनयिक संबंध बनाए गए। इस प्रकार बिम्बिसार ने ऐसी नीति विकसित की जिसमें विस्तार का अर्थ हर दिशा में निरंतर युद्ध नहीं था, बल्कि संभावित शत्रुओं को मित्र, संबंधी अथवा तटस्थ शक्ति में बदलकर लक्षित विजय करना था। यही नीति आगे मगध के राजनीतिक विस्तार के लिए स्थायी आधार बनी। उसकी उपलब्धि ने यह भी स्थापित किया कि विजय के बाद क्षेत्रीय प्रशासन को बनाए रखना साम्राज्य-विस्तार का उतना ही आवश्यक भाग था जितना युद्ध जीतना।

अजातशत्रु: विस्तार से राजनीतिक अधीनता तक

अजातशत्रु के शासन में मगध की साम्राज्यवादी नीति अधिक आक्रामक, जटिल और दूरगामी स्वरूप ग्रहण करती है। बिम्बिसार के समय वैवाहिक संबंधों द्वारा नियंत्रित राजनीतिक समीकरण उसके उत्तराधिकारी के समय स्थायी नहीं रहे, परिणामतः अजातशत्रु को ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा जिसमें केवल पूर्ववर्ती संधियों पर निर्भर रहना संभव नहीं था। कोशल के साथ संघर्ष और बाद के समझौते ने उसे यह अनुभव कराया कि शक्ति-राजनीति में युद्ध और पुनर्संधि दोनों आवश्यक उपकरण हो सकते हैं। अधिक महत्वपूर्ण उसका वज्जि-संघ के विरुद्ध अभियान था। महापरिनिब्बान सुत्त में अजातशत्रु की वज्जियों को परास्त करने की इच्छा तथा उसके मंत्री वस्सकार का बुद्ध से संवाद उल्लेखित है। परंपरा यह संकेत देती है कि मगध ने वज्जियों की आंतरिक एकता को उनकी मुख्य शक्ति माना और प्रत्यक्ष युद्ध से पहले उस एकता को तोड़ने की रणनीति अपनाई।⁵ इस प्रसंग का ऐतिहासिक महत्व किसी कथा-विशेष की सत्यता से अधिक उस राजनीतिक समझ में है जिसके अनुसार संघात्मक शक्ति को केवल रणभूमि पर नहीं, बल्कि उसके आंतरिक निर्णय-संबंधों को कमजोर करके भी परास्त किया जा सकता था। अजातशत्रु की नीति इसलिए साम्राज्यवादी विस्तार के नए चरण का प्रतिनिधित्व करती है: लक्ष्य केवल क्षेत्रीय

³ सेन, शैलेन्द्र नाथ. (1999). एंशिअंट इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन. न्यू एज इंटरनेशनल, नई दिल्ली, पृ. 112-114.

⁴ रायचौधुरी, एच. सी. (1927). पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिअंट इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 97-100.

⁵ वाल्शे, मॉरिस (अनु.). (1995). द लॉन्ग डिस्कोर्सेज ऑफ द बुद्ध: ए ट्रांसलेशन ऑफ द दीघ निकाय. विजडम पब्लिकेशन्स, बोस्टन, पृ. 231-232.

विजय नहीं था, बल्कि स्वतंत्र राजनीतिक संरचनाओं को समाप्त कर उन्हें मगध की अधीनता में लाना था। वज्जि-संघ के पराभव के बाद गंगा के उत्तर का महत्वपूर्ण क्षेत्र मगध के राजनीतिक प्रभाव में आया और एक बड़े गण-संघ की स्वतंत्रता समाप्त हुई।⁶ इस सफलता ने राजतंत्रीय मगध को क्षेत्रीय शक्ति से ऊपर उठाकर व्यापक राजनीतिक एकीकरण का मुख्य केंद्र बना दिया। अजातशत्रु की नीति से स्पष्ट होता है कि साम्राज्य-विस्तार में सैन्य दबाव, कूटनीतिक विभाजन, मनोवैज्ञानिक रणनीति और युद्धोत्तर समावेशन परस्पर पूरक साधन थे। यह केवल सीमांत संशोधन नहीं था, स्वतंत्र गणतंत्रीय सत्ता के स्थान पर व्यापक राजकीय अधिकार स्थापित करने और उत्तर बिहार को मगध की दीर्घकालीन राजनीतिक संरचना से जोड़ने की दिशा में निर्णायक कदम था।

उदायिन और पाटलिपुत्र: विजय का प्रशासनिक स्थायित्व

अजातशत्रु के बाद उदायिन का महत्व मुख्यतः इस तथ्य में है कि मगध के पूर्ववर्ती विस्तार को अधिक स्थायी प्रशासनिक रूप देने की प्रक्रिया उसके समय पाटलिपुत्र के उभार से जुड़ती है। परंपराएँ उदायिन को पाटलिपुत्र की स्थापना अथवा उसे राजधानी के रूप में विकसित करने का श्रेय देती हैं, यद्यपि पाटलिग्राम की सामरिक महत्ता अजातशत्रु के समय ही स्पष्ट हो चुकी थी।⁷ राजनीतिक दृष्टि से यह परिवर्तन अत्यंत महत्वपूर्ण था, क्योंकि एक विस्तृत राज्य केवल विजय के आधार पर नहीं टिक सकता, उसे ऐसा केंद्रीय स्थल चाहिए जहाँ से विभिन्न अधीन प्रदेशों पर निगरानी, राजकीय आदेशों का प्रसार और प्रशासनिक नियंत्रण संचालित किया जा सके। राजगृह प्रारम्भिक मगध की शक्ति का केंद्र था, पर उत्तर और पश्चिम की ओर बढ़ते राजनीतिक अधिकार के साथ पाटलिपुत्र अधिक उपयुक्त राजकीय केंद्र बनता गया। यहाँ राजधानी-परिवर्तन को भौगोलिक लाभ की पुनरावृत्ति के रूप में नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी नीति के संस्थागत चरण के रूप में समझना चाहिए। उदायिन के समय तक मगध की सत्ता ऐसे क्षेत्रों तक पहुँच चुकी थी जिन्हें केवल व्यक्तिगत राजा की उपस्थिति से नियंत्रित नहीं किया जा सकता था, इसलिए राजधानी स्वयं साम्राज्य-संचालन की संस्था बन गई। कुछ परंपराएँ उदायिन को अवन्ति से संघर्ष से भी जोड़ती हैं, पर इन विवरणों का कालक्रम निश्चित नहीं है। अधिक सुरक्षित निष्कर्ष यह है कि उसके शासन ने पूर्ववर्ती विजयों को बनाए रखने और मगध को एक बहु-क्षेत्रीय सत्ता के रूप में संगठित करने की दिशा में संक्रमण प्रस्तुत किया।⁸ साम्राज्यवादी विस्तार के इतिहास में यह चरण विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यहाँ युद्ध की अपेक्षा राजनीतिक सुदृढ़ीकरण अधिक केंद्रीय हो जाता है। एकीकृत राज्य के लिए राजधानी, अधिकारियों और अधीन क्षेत्रों के बीच स्थायी संबंध स्थापित करना आवश्यक था। उदायिन की भूमिका इसी राजनीतिक स्थायित्व की दिशा में देखी जानी चाहिए, जिसने आगे शिशुनाग और नन्दों के अधिक व्यापक विस्तार को सम्भव बनाने वाली प्रशासनिक निरंतरता तैयार की।

⁶ शर्मा, जे. पी. (1968). रिपब्लिक्स इन एंशिअंट इंडिया, सी. 1500 बी.सी.-500 बी.सी. ई. जे. ब्रिल, लीडेन, पृ. 81-83.

⁷ सिंह, उपेन्द्र. (2008). ए हिस्ट्री ऑफ एंशिअंट एंड अर्ली मीडियल इंडिया. पियर्सन लॉन्गमैन, दिल्ली, पृ. 271-272.

⁸ रायचौधुरी, एच. सी. (1927). पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिअंट इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 110-111.

शिशुनागः स्वतंत्र प्रतिद्वंद्वी शक्ति का समावेशन

हर्यक वंश के बाद शिशुनाग का सत्ता में आना मगध के राजनीतिक इतिहास में केवल राजवंशीय परिवर्तन नहीं था, यह इस तथ्य का प्रमाण भी था कि मगध की विस्तारवादी दिशा किसी एक परिवार पर निर्भर नहीं रही। परंपरा के अनुसार शिशुनाग पूर्व प्रशासन से जुड़ा अधिकारी था और उसके शासन में मगध ने पुनः सक्रिय विस्तार की नीति अपनाई। उसकी सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि अवन्ति की शक्ति का अंत और उसके राज्य का मगध में समावेशन माना जाता है।⁹ यह घटना इसलिए निर्णायक थी क्योंकि अवन्ति लंबे समय से उत्तर और मध्य भारत की प्रमुख स्वतंत्र राजशक्तियों में से एक था। उसे पराजित करना मात्र एक शत्रु राजा को हटाना नहीं था, इससे एक स्वायत्त राजनीतिक केंद्र समाप्त हुआ और पश्चिम की ओर मगध के प्रभाव का विस्तार हुआ। उपिन्दर सिंह शिशुनाग के समय अवन्ति के अधिग्रहण को मगध की बढ़ती प्रभुता का प्रमुख चरण मानती हैं।¹⁰ इस विजय का अर्थ यह भी था कि पूर्ववर्ती बहु-केंद्रीय महाजनपदीय व्यवस्था और कमजोर हुई। शिशुनाग की साम्राज्यवादी नीति का विशिष्ट पक्ष यह था कि उसने पुराने प्रतिद्वंद्वी को केवल अधीनता स्वीकार कराने तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसके राजवंशीय स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त कर क्षेत्र को मगध की राजनीतिक संरचना में सम्मिलित किया। यदि बिम्बिसार की नीति चयनात्मक विस्तार और अजातशत्रु की नीति गण-संघ के विघटन की थी, तो शिशुनाग के समय 'प्रतिद्वंद्वी शक्ति के पूर्ण समावेशन' की प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट होती है। यह चरण उत्तर भारत के राजनीतिक एकीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण था, क्योंकि स्वतंत्र शक्तियों की संख्या निरंतर घट रही थी और मगध का राजनीतिक क्षेत्र अनेक पूर्व महाजनपदों को समेटने लगा था। शिशुनाग की उपलब्धि ने आगे नन्दों को ऐसा व्यापक राजकीय आधार दिया, जहाँ से वे पुराने महाजनपदीय सीमाओं से बाहर अधिक विशाल सार्वभौम दावे कर सके। इस प्रकार उसकी विजय ने प्रतिस्पर्धी क्षेत्रीय राजनीति को क्रमशः केंद्राभिमुख राजनीतिक व्यवस्था में बदलने की प्रक्रिया को तेज किया।

कालाशोक और संक्रमणकालीन सुदृढीकरण

शिशुनाग के उत्तराधिकारी कालाशोक का शासन साम्राज्यवादी इतिहास में प्रायः उसके पिता की विजय और नन्दों की व्यापक शक्ति के बीच दब जाता है, किंतु राजनीतिक एकीकरण की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण संक्रमणकाल था। उसकी भूमिका नए क्षेत्रों की बड़ी विजय से अधिक पहले से विस्तृत मगधी सत्ता को बनाए रखने, राजधानी-केन्द्रित शासन को स्थिर करने और राजवंशीय निरंतरता स्थापित करने में दिखाई देती है। परंपराएँ कालाशोक को पाटलिपुत्र से जोड़ती हैं और उसके समय इस नगर का राजकीय महत्व और स्पष्ट हो जाता है।¹¹ यहाँ राजधानी का महत्व फिर भौगोलिक कारण से अधिक प्रशासनिक था: मगध अब केवल राजगृह और उसके निकटवर्ती भूभाग तक सीमित शक्ति नहीं था, बल्कि कई पूर्ववर्ती राजनीतिक क्षेत्रों पर अधिकार रखने वाला

⁹ रायचौधुरी, एच. सी. (1927). पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिअंट इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 114–115.

¹⁰ सिंह, उपिन्दर. (2008). ए हिस्ट्री ऑफ एंशिअंट एंड अर्ली मीडियल इंडिया. पियर्सन लॉन्गमैन, दिल्ली, पृ. 272.

¹¹ शास्त्री, के. ए. नीलकण्ठ (सम्पा.). (1988). एज ऑफ द नन्दाज एंड मौर्याज. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 9–11.

राज्य बन चुका था। ऐसे राज्य को एक ऐसी राजकीय केंद्र-संरचना की आवश्यकता थी जहाँ से अधिकारियों, अधीन केंद्रों और राजपरिवार के बीच शासन की निरंतरता संचालित हो सके। बौद्ध परंपरा कालाशोक को वैशाली में आयोजित द्वितीय बौद्ध संगीति से भी जोड़ती है, यद्यपि इस घटना की तिथि और विवरण पर मतभेद हैं।¹² राजनीतिक दृष्टि से इसका संकेत यह है कि पूर्व में स्वतंत्र रहा वैशाली क्षेत्र अब मगधी राजसत्ता के संरक्षण और प्रभाव की परिधि के भीतर था। कालाशोक के बाद उत्तराधिकार के संबंध में विभिन्न परंपराएँ परस्पर विरोधी विवरण देती हैं, कहीं उसके पुत्रों के संयुक्त शासन का उल्लेख है, तो कहीं क्रमिक उत्तराधिकार की सूचना मिलती है। इस अस्पष्टता के बावजूद महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि राजवंशीय परिवर्तन से मगध का व्यापक राजनीतिक ढाँचा तत्काल विघटित नहीं हुआ। इससे साम्राज्यवादी सत्ता का संस्थागत चरित्र स्पष्ट होता है: राज्य की निरंतरता अब केवल एक विजेता राजा के व्यक्तित्व पर निर्भर नहीं थी। इसी स्थिर आधार पर नन्दों ने सत्ता प्राप्त करके राजनीतिक केंद्रीकरण को और अधिक व्यापक तथा आक्रामक रूप दिया। अतः कालाशोक का महत्व विजय की चमक से अधिक प्राप्त राजनीतिक क्षेत्र को उत्तराधिकारी सत्ता-व्यवस्था में सुरक्षित रखने में निहित था।

महापद्मनन्दः क्षेत्रीय प्रभुता से सार्वभौम सत्ता के दावे तक

नन्द वंश के संस्थापक महापद्मनन्द के समय मगध की साम्राज्यवादी नीति पूर्ववर्ती क्षेत्रीय विस्तार से आगे बढ़कर व्यापक सार्वभौम सत्ता के दावे में परिवर्तित होती दिखाई देती है। पुराणीय परंपराएँ उसे 'एकराट्' अर्थात् एकमात्र सार्वभौम शासक तथा अनेक क्षत्रिय राजवंशों का उच्छेदक बताती हैं। इन दावों को शाब्दिक अर्थ में स्वीकार करना कठिन है, क्योंकि पुराणों की वंशावली और वैचारिक भाषा अक्सर राजनीतिक उपलब्धियों को अतिरंजित रूप देती है, फिर भी 'एकराट्' की उपाधि यह संकेत अवश्य देती है कि नन्द सत्ता स्वयं को केवल मगध के राजा के रूप में नहीं, बल्कि अनेक परंपरागत राजवंशों के ऊपर सर्वोच्च शासक के रूप में प्रस्तुत कर रही थी।¹³ पुराणों में इक्ष्वाकु, पांचाल, काशी, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरु, मैथिल, शूरसेन और वीतिहोत्र जैसे राजवंशों के विनाश का उल्लेख इसी व्यापक दावे का हिस्सा है। इन सभी क्षेत्रों पर प्रत्यक्ष और समान प्रशासन स्थापित हुआ था, ऐसा मानना आवश्यक नहीं, किंतु यह परंपरा नन्द शक्ति के विस्तृत राजनीतिक प्रभाव की स्मृति को सुरक्षित रखती है। कलिंग में नन्द अधिकार का अधिक ठोस संकेत बाद के हाथीगुम्फा अभिलेख से मिलता है, जिसमें नन्दराज से संबंधित नहर और कलिंग की वस्तु को मगध ले जाने की स्मृति दर्ज है।¹⁴ इस साक्ष्य से स्पष्ट होता है कि नन्द विस्तार गंगा घाटी तक सीमित नहीं रहा। महापद्मनन्द की साम्राज्यवादी नीति का सार पुराने क्षेत्रीय राजवंशों की स्वायत्तता को समाप्त कर व्यापक राजकीय सर्वोच्चता स्थापित करना था। इस चरण

¹² दत्त, नलिनाक्ष. (1978). बुद्धिस्ट सेक्ट्स इन इंडिया. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 17-18.

¹³ रायचौधुरी, एच. सी. (1927). पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिअंट इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 118-120.

¹⁴ सरकार, डी. सी. (1965). सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स बेयरिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन, खंड-५. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 213-214.

में राजनीतिक एकीकरण का अर्थ अनेक स्वतंत्र राजसत्ताओं के सहअस्तित्व से हटकर एक ऐसे केंद्र की ओर बढ़ना था जो अधीन क्षेत्रों पर सर्वोच्च अधिकार का दावा करता था। इसीलिए अनेक इतिहासकार नन्दों को मौर्यों से पहले उत्तर भारत के प्रथम व्यापक साम्राज्य का निर्माता मानते हैं। महापद्मनन्द के शासन में विजय की भाषा इतनी व्यापक हो जाती है कि मगध की सत्ता क्षेत्रीय प्रभुता से ऊपर उठकर उत्तर भारतीय सार्वभौमिकता की राजनीतिक अवधारणा से जुड़ने लगती है।

नन्द प्रशासन और साम्राज्यवादी केंद्रीकरण

नन्दों की राजनीतिक सफलता केवल उनके विजित भू-क्षेत्र की व्यापकता में नहीं, बल्कि उस सत्ता को केंद्र से नियंत्रित करने की क्षमता में भी निहित थी। उपलब्ध स्रोत प्रशासनिक संस्थाओं का पूर्ण विवरण नहीं देते, इसलिए नन्द शासन के विषय में अत्यधिक निश्चित दावे उचित नहीं हैं, फिर भी भारतीय और यूनानी परंपराओं से यह स्पष्ट होता है कि नन्द राज्य के पास नियमित कर-संग्रह, विशाल राजकोष, नियुक्त अधिकारियों और बड़ी सैन्य संरचना को बनाए रखने की पर्याप्त प्रशासनिक क्षमता थी। नन्द शासन के अध्ययनों में व्यवस्थित राजस्व-संग्रह और नियुक्त अधिकारियों की भूमिका को केंद्रीकृत नियंत्रण की दिशा में महत्वपूर्ण विकास माना गया है।¹⁵ यहाँ कर-व्यवस्था का विश्लेषण आर्थिक समृद्धि के स्वतंत्र विषय के रूप में नहीं, बल्कि साम्राज्य संचालन की राजनीतिक तकनीक के रूप में किया जाना चाहिए। विभिन्न अधीन क्षेत्रों से राजस्व प्राप्त करना, उसे राजधानी तक पहुँचाना और सेना तथा प्रशासन पर व्यय करना राजनीतिक अधीनता को वास्तविक रूप देता था। इसी प्रकार यूनानी लेखकों के 'नोमार्क' और 'हाइपार्क' जैसे पदनामों से प्रांतीय अथवा क्षेत्रीय अधिकारियों की उपस्थिति का संकेत मिलता है, यद्यपि उन्हें भारतीय प्रशासनिक संरचना से सीधे समान करना सावधानी की माँग करता है।¹⁶ नन्द शासन में संभवतः स्थानीय स्तर पर कुछ पूर्ववर्ती व्यवस्थाएँ बनी रहीं, लेकिन सर्वोच्च राजकीय अधिकार पाटलिपुत्र में केंद्रित था। यही स्तरीकृत अधीनता बड़े साम्राज्य के लिए आवश्यक थी: प्रत्येक क्षेत्र में समान प्रत्यक्ष शासन की आवश्यकता नहीं, पर राजनीतिक निष्ठा, कर और सैन्य आदेश की अंतिम दिशा केंद्रीय सत्ता से जुड़ी होनी चाहिए। नन्दों ने इस मॉडल को इतना सुदृढ़ किया कि बाद की परंपरा उन्हें अपार धन-संपदा और विशाल राज्य के स्वामी के रूप में याद करती है। इस प्रकार केंद्रीकरण ने विजय को स्थायी साम्राज्य में परिवर्तित किया और उत्तर भारत के राजनीतिक एकीकरण को संस्थागत आधार प्रदान किया।

धनानन्द और नन्द साम्राज्य की बाहरी प्रतिष्ठा

नन्द वंश के अंतिम चरण, विशेषकर धनानन्द के समय, मगध की शक्ति का महत्व इस तथ्य में भी दिखाई देता है कि उसकी प्रतिष्ठा उत्तर-पश्चिम भारत तक पहुँची हुई थी। सिकन्दर के

¹⁵ शास्त्री, के. ए. नीलकण्ठ (सम्पा.). (1988). एज ऑफ द नन्दाज एंड मौर्याज. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 13-15.

¹⁶ मुखर्जी, राधाकुमुद. (1988). चन्द्रगुप्त मौर्य एंड हिज टाइम्स. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 13-14.

भारतीय अभियान से संबंधित यूनानी परंपराएँ गंगा के पार स्थित एक अत्यंत शक्तिशाली शासक और विशाल सेना का उल्लेख करती हैं। इन विवरणों में पैदल सैनिकों, घुड़सवारों, रथों और हाथियों की जो संख्याएँ दी गई हैं, वे संभवतः अतिरंजित हैं, फिर भी उनका ऐतिहासिक मूल्य इस बात में है कि समकालीन अथवा निकटवर्ती राजनीतिक कल्पना में नन्द सत्ता को सामान्य क्षेत्रीय राज्य नहीं, बल्कि विशाल संसाधनों और विस्तृत अधीनता वाले साम्राज्य के रूप में देखा जाता था।¹⁷ हेमचन्द्र रायचौधुरी ने यूनानी 'Agrammes' या 'Xandrames' संबंधी परंपराओं को भारतीय नन्द वंश से जोड़ते हुए इस काल में पाटलिपुत्र-केंद्रित सत्ता की व्यापकता पर चर्चा की है।¹⁸ धनानन्द की व्यक्तिगत लोकप्रियता के संबंध में बाद की भारतीय कथाएँ नकारात्मक हैं और उसे अत्यधिक कर-संग्रह तथा धन-संचय से जोड़ती हैं, इन कथाओं में मौर्य-पूर्व राजनीतिक संघर्ष की स्मृति और बाद की वैचारिक आलोचना दोनों सम्मिलित हो सकती हैं। इसलिए उन्हें सीधे प्रशासनिक तथ्य के रूप में पढ़ना उचित नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि नन्द राज्य अपने अंतिम चरण तक इतना बड़ा था कि उसका पतन किसी छोटे राजवंशीय परिवर्तन की तरह नहीं, बल्कि एक विशाल राजनीतिक संरचना के हस्तांतरण की तरह हुआ। चन्द्रगुप्त मौर्य ने शून्य से साम्राज्य निर्मित नहीं किया, उसने नन्दों द्वारा संगठित पाटलिपुत्र-केंद्रित भू-राजनीतिक ढाँचे को अपने नियंत्रण में लिया और आगे विस्तृत किया। इस दृष्टि से धनानन्द का शासन उत्तर भारत के पूर्व-मौर्य राजनीतिक एकीकरण का अंतिम चरण था, जहाँ मगध की सर्वोच्चता व्यापक रूप से स्थापित थी, यद्यपि उसकी वैधता और आंतरिक समर्थन पूर्णतः स्थिर नहीं रहे। इसलिए नन्दों की विरासत का मूल्यांकन उनके पतन से नहीं, बल्कि उस विशाल राजनीतिक ढाँचे से करना चाहिए जिसे अगला राजवंश तत्काल ग्रहण कर सका।

उत्तर भारत के राजनीतिक एकीकरण के प्रमुख साधन

बिम्बिसार से नन्दों तक उत्तर भारत के राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि मगध ने एक ही साधन पर निर्भर रहने के बजाय परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न राजनीतिक तकनीकों का उपयोग किया। प्रत्यक्ष विजय इसका सबसे स्पष्ट साधन था, लेकिन विजय तभी स्थायी बनती थी जब पराजित क्षेत्र की राजनीतिक स्वायत्तता समाप्त या सीमित करके उसे मगधी सत्ता से जोड़ा जाए। अंग के प्रशासनिक समावेशन, वज्जि-संघ के विघटन, अवन्ति के राजवंशीय अंत और नन्दों के व्यापक अधीनता-दावों में यही क्रम अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है। दूसरा साधन वैवाहिक कूटनीति था, जिसका सर्वाधिक स्पष्ट प्रयोग बिम्बिसार ने किया, इससे संभावित शत्रु शक्तियों को तत्काल संघर्ष से दूर रखा जा सकता था और मगध को लक्षित विस्तार के लिए राजनीतिक अवसर मिलता था। तीसरा साधन आंतरिक विभाजन और राजनयिक हस्तक्षेप था, जिसका आदर्श उदाहरण वज्जियों के विरुद्ध वस्सकार से

¹⁷ शास्त्री, के. ए. नीलकण्ठ (सम्पा.). (1988). एज ऑफ द नन्दाज एंड मौर्याज. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 15-16.

¹⁸ रायचौधुरी, एच. सी. (1927). पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशिअंट इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 119-120.

जुड़ी परंपरा है। चौथा साधन प्रशासनिक पुनर्संरचना था – विजित क्षेत्र में राजपरिवार, अधिकारी या केंद्रीय सत्ता से जुड़े प्रतिनिधियों की उपस्थिति ने विजय को प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण में बदला। पाँचवाँ साधन राजधानी और राजकीय केंद्र का ऐसा संगठन था जिससे विस्तृत भू-क्षेत्र पर आदेश और अधीनता बनाए रखी जा सके।¹⁹ छठा साधन पूर्व राजवंशीय शक्ति का उन्मूलन अथवा उसके स्थान पर नई सर्वोच्चता स्थापित करना था, जो शिशुनाग और विशेषकर महापद्मनन्द के संदर्भ में स्पष्ट है। इन सभी उपायों का संयुक्त परिणाम यह हुआ कि उत्तर भारत में स्वतंत्र सत्ता-केंद्रों की संख्या घटती गई और मगध की अधीनता विस्तृत राजनीतिक संबंध में बदलती गई। इसलिए राजनीतिक एकीकरण को आधुनिक समान प्रशासन वाले राष्ट्र-राज्य की तरह नहीं समझना चाहिए, यह विविध क्षेत्रों को एक केंद्रीय राजसत्ता की सर्वोच्चता से बाँधने की प्रक्रिया थी।²⁰ इसी बहु-स्तरीय नीति ने मगध को कई पीढ़ियों और राजवंशों के पार विस्तार बनाए रखने में सक्षम बनाया। यही इसकी साम्राज्यवादी नीति की सबसे स्थायी और विशिष्ट विशेषता थी।

राजनीतिक एकीकरण की प्रकृति और उसकी सीमाएँ

मगध के राजनीतिक एकीकरण को आधुनिक केंद्रीकृत राष्ट्र-राज्य के समान समझना ऐतिहासिक रूप से अनुचित होगा। बिम्बिसार से नन्दों तक विकसित सत्ता ने अवश्य ही अनेक स्वतंत्र महाजनपदों, गण-संघों और राजवंशों को अपने अधीन किया, पर इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक क्षेत्र में समान प्रशासनिक कानून, एकरूप स्थानीय संस्थाएँ और प्रत्यक्ष केंद्रीय नौकरशाही स्थापित हो गई थी। प्राचीन साम्राज्य सामान्यतः बहु-स्तरीय अधीनता पर आधारित थे, जहाँ कुछ क्षेत्र सीधे केंद्र से नियंत्रित हो सकते थे, कुछ में स्थानीय अधिकारियों या राजकीय प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन चलता था और कुछ क्षेत्रों से मुख्यतः कर, निष्ठा तथा सैन्य सहयोग अपेक्षित होता था। नन्द साम्राज्य के प्रशासन के लिए उपलब्ध साक्ष्य भी हमें पूर्ण प्रांतीय संरचना नहीं देते। इसलिए 'राजनीतिक एकीकरण' का अर्थ यहाँ विभिन्न क्षेत्रों को एक सर्वोच्च मगधी सत्ता के अधीन लाना, स्वतंत्र विदेश नीति की उनकी क्षमता को सीमित करना और केंद्रीय सत्ता के अधिकार को मान्यता दिलाना है। इस प्रक्रिया की दूसरी सीमा स्रोतों की प्रकृति है। पुराणों में महापद्मनन्द द्वारा अनेक क्षत्रिय वंशों के उन्मूलन का दावा व्यापक हो सकता है, लेकिन प्रत्येक नामित क्षेत्र पर प्रत्यक्ष शासन की पुष्टि समान रूप से उपलब्ध नहीं है। कलिंग पर नन्द अधिकार के लिए हाथीगुम्फा अभिलेख अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण साक्ष्य देता है, जबकि दक्षिण के कुछ क्षेत्रों पर नन्द सत्ता संबंधी बाद के अभिलेखों को सावधानी से उपयोग करना चाहिए।²¹ इस प्रकार एकीकरण वास्तविक था, पर उसकी तीव्रता क्षेत्रानुसार भिन्न रही होगी। तीसरी सीमा राजनीतिक वैधता से जुड़ी थी: धनानन्द के विरुद्ध बाद की परंपराएँ संकेत देती हैं कि व्यापक क्षेत्र पर नियंत्रण अपने आप स्थायी

¹⁹ थापर, रोमिला. (2002). अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए. डी. 1300. पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 152–153.

²⁰ झा, डी. एन. (1998). एंशिपंट इंडिया: इन हिस्टोरिकल आउटलाइन. मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 80–82.

²¹ सरकार, डी. सी. (1965). सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स बेयरिंग ऑन इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन, खंड-५. यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृ. 220–221.

लोकप्रिय स्वीकृति उत्पन्न नहीं करता। अतः नन्द साम्राज्य ने उत्तर भारत का अभूतपूर्व राजनीतिक केंद्रीकरण किया, लेकिन वह अभी भी विविध स्थानीय संरचनाओं, राजकीय अधीनता और केंद्रीय शक्ति के बीच संतुलन पर आधारित था। यही ढाँचा आगे मौर्यों के लिए अधिक विकसित प्रशासनिक एकीकरण की आधारभूमि बना।

निष्कर्ष

बिम्बिसार से नन्दों तक मगध की साम्राज्यवादी नीति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उत्तर भारत का राजनीतिक एकीकरण किसी एक विजेता शासक या एक निर्णायक युद्ध का परिणाम नहीं था। यह कई पीढ़ियों तक चलने वाली क्रमिक प्रक्रिया थी जिसमें प्रत्येक प्रमुख शासक ने पूर्ववर्ती उपलब्धियों को नई दिशा दी। बिम्बिसार ने प्रत्यक्ष विजय को वैवाहिक कूटनीति और अधीन प्रदेशों के प्रशासनिक नियंत्रण से जोड़कर विस्तार का प्रारम्भिक मॉडल प्रस्तुत किया। अजातशत्रु ने इस मॉडल को अधिक आक्रामक बनाते हुए गण-संघीय स्वायत्तता को चुनौती दी और कूटनीतिक विभाजन तथा सैन्य अधीनता को संयोजित किया। उदायिन के समय पाटलिपुत्र का उभार विजय को प्रशासनिक स्थायित्व में बदलने की दिशा में महत्वपूर्ण रहा। शिशुनाग ने अवन्ति जैसी स्वतंत्र प्रतिद्वंद्वी सत्ता का अंत कर बहु-केंद्रीय राजनीतिक व्यवस्था को और कमजोर किया, जबकि कालाशोक ने विस्तृत मगधी राज्य की निरंतरता बनाए रखने वाले संक्रमणकाल का प्रतिनिधित्व किया। महापद्मनन्द के समय साम्राज्यवादी नीति 'एकराट्' जैसे सार्वभौम दावे तक पहुँची और नन्द सत्ता गंगा घाटी से बाहर व्यापक अधीनता स्थापित करने लगी। धनानन्द तक आते-आते पाटलिपुत्र ऐसी विशाल राजनीतिक संरचना का केंद्र बन चुका था जिसकी शक्ति की सूचना उत्तर-पश्चिम भारत और यूनानी जगत तक पहुँचती थी। इस पूरी प्रक्रिया में विजय, विवाह, संधि, राजनीतिक विभाजन, राजवंशीय उन्मूलन, प्रांतीय नियंत्रण और राजधानी-केन्द्रित शासन परस्पर पूरक साधन रहे। इसलिए मगध का राजनीतिक एकीकरण आधुनिक राष्ट्रीय एकीकरण नहीं, बल्कि अनेक स्वतंत्र राजनीतिक इकाइयों को एक केंद्रीय राजसत्ता की सर्वोच्चता के अधीन लाने की प्रक्रिया थी। नन्दों की सबसे बड़ी ऐतिहासिक उपलब्धि यही थी कि उन्होंने पूर्ववर्ती मगधी विस्तार को ऐसे बहु-क्षेत्रीय साम्राज्य में परिवर्तित किया जिसे बाद में मौर्यों ने प्राप्त कर और अधिक विस्तृत तथा संस्थागत रूप दिया। इस दृष्टि से मौर्य साम्राज्य की पूर्वपीठिका वास्तव में बिम्बिसार से नन्दों तक चली दो शताब्दियों की मगधी साम्राज्य-निर्माण प्रक्रिया में निहित थी। यही निरंतरता प्राचीन उत्तर भारत के राज्य-निर्माण को समझने की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक कुंजी प्रदान करती है।